सबद
पीयर-रिव्यूड त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष- 1, अंक- 3 (जुलाई–सितंबर 2026)
ISSN: 3139-5317 (Online), 3139-5325 (Print)

अस्मिता का संकट और आत्मनिर्वासन की समस्या 'अँधेरे में' कविता के विशेष संदर्भ में

डॉ. प्रदीप कुमार प्रजापति
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी, शहीद दुर्वासा निषाद शासकीय महाविद्यालय,
अर्जुंदा, जिला – बालोद, छत्तीसगढ़

शोध सार

मुक्तिबोध की कालजयी रचना 'अँधेरे में' केवल एक कविता नहीं, बल्कि आधुनिक भारतीय मध्यवर्गीय व्यक्ति के अंतर्मन का एक जटिल मनोवैज्ञानिक और समाजशास्त्रीय दस्तावेज़ है। प्रस्तुत शोध पत्र इस कविता के विशेष संदर्भ में मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी के 'अस्मिता के संकट' और 'आत्मनिर्वासन' की समस्या का विस्तृत अन्वेषण करता है। पूंजीवादी व्यवस्था के भीतर पलने वाला मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी सत्य को जानता है, किंतु अपनी सामाजिक सुरक्षा और पद-प्रतिष्ठा के छद्म आवरण को बचाने के लिए वह संघर्ष से कतराता है। यह पलायनवाद उसे आत्मनिर्वासन की ओर धकेलता है, जहाँ वह अपनी ही पहचान (अस्मिता) खो बैठता है। यह शोध आलेख 'अँधेरे में' की फैंटेसी तकनीक, रहस्यमय पुरुष की उपस्थिति, और 'परम अभिव्यक्ति' की खोज के माध्यम से यह स्थापित करता है कि अस्मिता का वास्तविक अर्थ समाज से कटकर एकांत में जीने में नहीं, अपितु 'वर्गापसरण' के माध्यम से जन-संघर्षों में शामिल होने में है।

बीज शब्द : मुक्तिबोध, अँधेरे में, अस्मिता का संकट, आत्मनिर्वासन, मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी, फैंटेसी, वर्गापसरण, परम अभिव्यक्ति।

प्रस्तावना :

गजानन माधव मुक्तिबोध हिंदी 'नई कविता' और 'प्रयोगवाद' के ऐसे शिखर पुरुष हैं, जिन्होंने कविता को केवल भावों की अभिव्यक्ति तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे युग के भयावह यथार्थ और वैचारिक संघर्ष का हथियार बनाया। “मुक्तिबोध की किसी भी कविता का कथ्य 'अस्मिता की खोज' नहीं है। उनकी कविताएँ तो 'निःस्वात्म के विकास' की कविताएँ है; 'अस्मिता के विलय' की कविताएँ हैं।”[1] उनकी सबसे लंबी और चर्चित कविता 'अँधेरे में' (जो उनके काव्य संग्रह 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' में संकलित है) को आधुनिक हिंदी साहित्य की सबसे जटिल और अर्थगर्भित रचना माना जाता है। यह कविता स्वतंत्रता के बाद के भारतीय समाज, विशेषकर मध्यवर्ग के भंग होते मोह, राजनैतिक भ्रष्टाचार, और पूंजीवादी अमानवीयता का एक खौफनाक एक्स-रे प्रस्तुत करती है। 'अँधेरे में' का वाचक, कविता के प्रारंभ में, अपनी अस्मिता को बचाए रखने वाला आत्मनिर्वासित मध्यवर्गीय आदमी है। वह अपनी अस्मिता को विलुप्त नहीं करना चाहता, लेकिन ज़िंदगी के अंतर्विरोध और यथार्थ की चोट उसे किसी एक दिशा की ओर धकेलती है। अपनी सही स्थिति के प्रति उसका अज्ञान या मिथ्या चेतना ही वह अंधकार है जो उसे आत्मनिर्वासित किए हुए है। क्या यह एक अनुभूत सत्य नहीं है कि निम्नमध्यवर्ग पर भी आर्थिक संकट, शोषण की मार और दैनिक आवश्यकताओं की अपूर्ति की चोट पड़ रही है? उसे सर्वहारा के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने में शर्म क्यों आती है? उसके अपने ढुलमुलपन के कारण उसका मोहभंग शनैः शनैः होता है। उसे उसकी अस्मिता और व्यक्तिवादिता तथा आत्मनिर्वासन

वर्ष- 1, अंक- 3 (जुलाई–सितंबर 2026)
ISSN: 3139-5317 (Online), 3139-5325 (Print)

की बुरी लत शोषितों की कतार में खड़ा नहीं होने देती। तब आत्मसंघर्ष होता है। यह संघर्ष अज्ञान और ज्ञान के बीच, अँधेरे और प्रकाश के बीच, वैयक्तिकता और सामूहिकता के बीच होता है। उसका अनुभवजन्य विवेक भीतर गुहार करता है। इस कविता का केंद्रीय विषय 'अस्मिता की खोज' है: “जनता समूह है-वह अज्ञ है, अन्धकार-ग्रस्त है, वह जल्दी ही भीड़ बन जाती है। उसका साथ मत दो। तुम सचेत व्यक्तित्वशाली प्राण-केन्द्र हो ।उसमें अपने-आपको विलीन मत करो ।”[2] मुक्तिबोध का नायक एक ऐसा मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी है जो बौद्धिक स्तर पर मार्क्सवादी और प्रगतिशील चेतना से परिपूर्ण है, परंतु व्यावहारिक स्तर पर वह कायर, समझौतापरस्त और ढुलमुल है। ज्ञान और आचरण के बीच का यह द्वैत उसके भीतर एक गहरा 'अस्मिता का संकट' पैदा करता है। इस संकट से बचने के लिए वह सत्य का सामना करने के बजाय 'आत्मनिर्वासन' का मार्ग चुनता है। “यथार्थ के तत्त्व परस्पर गुम्फित होते हैं, साथ ही पूरा यथार्थ गतिशील होता है। अभिव्यक्ति का विषय बनकर जो यथार्थप्रस्तुत होता है वह भी ऐसा ही गतिशील है, और उसके तत्त्व भी परस्पर गुम्फित हैं यही कारण है कि मैं छोटी कविताएँ लिख नहीं पाता और जो छोटी होती हैं वे वस्तुतः छोटी न होकर अधूरी होती हैं। (मैं अपनी बात कह रहा हूँ) । और इस प्रकार की न मालूम कितनी ही कविताएँ मैंने अधूरी लिखकर छोड़ दी। हैं। उन्हें खत्म करने की कला मुझे नहीं आती यही मेरी ट्रैजेडी है।”[3] प्रस्तुत शोध आलेख इसी अस्मिता के संकट और आत्मनिर्वासन की समस्या के कारणों, उसके प्रभावों और कविता में सुझाए गए उसके समाधानों का तार्किक विश्लेषण करता है।

अस्मिता का अर्थ केवल व्यक्तिगत पहचान नहीं है, बल्कि यह एक व्यापक सामाजिक संदर्भ में व्यक्ति की सार्थकता को प्रमाणित करती है। 'अँधेरे में' कविता का नायक एक गंभीर अस्मिता के संकट से ग्रस्त है। वह जानता है कि समाज में शोषण है, व्यवस्था भ्रष्ट हो चुकी है और एक 'मार्शल लॉ' जैसी स्थिति निर्मित हो गई है, किंतु वह इसके खिलाफ आवाज़ उठाने से डरता है। कविता की शुरुआत ही अँधेरे कमरों और रहस्यमय गुफाओं से होती है: 'ज़िंदगी के कमरों में अँधेरे/ लगाता है चक्कर/ कोई एक लगातार...'। यह 'कोई एक' नायक की अपनी ही अंतरात्मा है, उसका अपना ही दबा हुआ क्रांतिकारी स्वरूप है जो उसे लगातार परेशान कर रहा है।

“वह रहस्यमय व्यक्ति
अब तक न पाई गई मेरी अभिव्यक्ति है,
पूर्ण अवस्था वह
निज-संभावनाओं, निहित प्रभावों , प्रतिभाओं की
मेरे परिपूर्ण का आविर्भाव,
हृदय में रिस रहे ज्ञान का तनाव वह,
आत्मा की प्रतिमा ।”[4]

वह अपनी इस 'परम अभिव्यक्ति' को पहचानता तो है, लेकिन उसे अपनाने से डरता है। यह डर उसकी सुविधाभोगी वृत्ति का परिणाम है। वह पूंजीवादी व्यवस्था के लाभों को पूरी तरह छोड़ नहीं पाता और सर्वहारा वर्ग के साथ पूरी तरह जुड़ नहीं पाता। त्रिशंकु की तरह बीच में लटके रहने की यह स्थिति ही उसका सबसे बड़ा संकट है। नायक की अस्मिता खंडित हो चुकी है। “अगर समाज और परिवार पर बुजुर्गों का वजन नहीं है, तो आज, मुख्यतः, वे स्वयं दोषी एवं अपराधी हैं स्वयं वे कहीं चूक गये, इसलिए मात खा गये।”[5] वह दफ्तर में कुछ और है, घर में कुछ और और अपनी बौद्धिक बहसों में कुछ और। यह चारित्रिक विखंडन उसे भीतर ही भीतर खोखला कर देता है।

वर्ष- 1, अंक- 3 (जुलाई–सितंबर 2026)
ISSN: 3139-5317 (Online), 3139-5325 (Print)

“गहन मृतात्माएँ इसी नगर की
हर रात जुलूस में चलतीं,
परंतु, दिन में
बैठती हैं मिलकर करती हुई षड्यंत्र
विभिन्न दफ्तरों-कार्यालयों, केंद्रों में, घरों में।
हाय, हाय ! मैंने उन्हें देख लिया नंगा” [6]

मुक्तिबोध अपनी मृत्यु के बाद भी प्रतिक्रियावादी कविता के ऐटीथीसिस बनकर फूट पड़े। उनकी प्रतिबद्ध कविता सही रूप में मध्यवर्ग को जन के साथ मिलाने के लिए आतुर है।

“पैरों से महसूस करता हूँ धरती का फैलाव,
हाथों से महसूस करता हूँ दिशाएँ,
साँसों से अनुभव करता हूँ दुनिया,
मस्तक अनुभव करता है आकाश,
दिल में तड़पता है अँधेरे का अंदाज़,
आँखें ये तथ्य को सूँघती-सी लगतीं;”[7]

डॉ. रामविलास शर्मा और नामवर सिंह जैसे आलोचकों ने भी माना है कि 'अँधेरे में' का नायक मध्यवर्ग की इसी विडंबना का शिकार है, जहाँ ज्ञान अकर्मण्यता में बदल गया है।

अस्मिता के संकट का सीधा परिणाम 'आत्मनिर्वासन' के रूप में सामने आता है। जब व्यक्ति सत्य का सामना करने का साहस नहीं जुटा पाता, तो वह खुद को समाज से काट लेता है। कविता का नायक भी बाहरी दुनिया की 'भयावह रात' और पूंजीवादी सत्ता के जुलूसों से डरकर अपने अँधेरे कमरे में छिप जाता है।

मुक्तिबोध की फैंटेसी में यह आत्मनिर्वासन भौतिक और मनोवैज्ञानिक दोनों स्तरों पर चित्रित हुआ है। “आज के युवक की बाह्य स्थिति और अन्तः स्थिति का वर्णन करते हुए एक कवि कहता है कि अगर बाह्य जगत् में काम करना पड़ा तो लामुहाला मुझे, 'भीड़' बन जाना पड़ेगा; मैं 'जुलूस' में शामिल हो जाऊँगा; लेकिन, 'भीड़' और 'जुलूस' तो मनुष्य के व्यक्तित्व के परिहार का, अन्तर्व्यक्तित्व के संहार का सूचक है, इसलिए मेरी मुक्ति कहीं भी नहीं है।”[8] नायक अपनी 'परम अभिव्यक्ति' (रहस्यमय पुरुष) के रक्त-स्नात चेहरे को देखकर घबरा जाता है, क्योंकि उसे स्वीकार करने का अर्थ है-खतरे उठाना, जेल जाना या जान गंवाना। 'आत्मनिर्वासन' मध्यवर्गीय व्यक्ति का एक सुरक्षा कवच है। वह सोचता है कि यदि वह चुप रहेगा और अपने कोने में दुबका रहेगा, तो वह सुरक्षित रहेगा।

“अब तक क्या किया,
जीवन क्या जिया,
ज्यादा लिया, और दिया बहुत-बहुत कम
मर गया देश, अरे, जीवित रह गए तुम !!”[9]

वर्ष- 1, अंक- 3 (जुलाई–सितंबर 2026)
ISSN: 3139-5317 (Online), 3139-5325 (Print)

लेकिन मुक्तिबोध स्पष्ट करते हैं कि तटस्थता या आत्मनिर्वासन वास्तव में शोषक सत्ता का ही मौन समर्थन है।

“मत बनो दार्शनिक बनावटी

तुम क्या हो

इसका उत्तर

टीन के कनस्तर ही देंगे” [10]

कविता में जब शहर की सड़कों पर एक भयानक जुलूस निकलता है, जिसमें शहर के नामी पत्रकार, पूंजीपति, नेता, और गुंडे शामिल हैं, तब नायक उन्हें खिड़की की झिरी से छिपकर देखता है। वह बाहर आकर उनका विरोध नहीं करता। यह छिपकर देखना उसके आत्मनिर्वासन की चरम अवस्था है। वह बौद्धिक रूप से इस जुलूस की असलियत जानता है, लेकिन उसके भीतर इतनी नैतिक शक्ति नहीं है कि वह सड़क पर उतरकर इस फासीवादी जुलूस को रोक सके।

आत्मनिर्वासन व्यक्ति को शांति नहीं देता, बल्कि उसे एक गहरे अपराधबोध से भर देता है। 'अँधेरे में' का नायक लगातार इस अपराधबोध से पीड़ित है। रहस्यमय पुरुष (जो संभवतः मार्क्स या कोई क्रांतिकारी आदर्श है) बार-बार उसके सपनों में आकर उसे धिक्कारता है।

मुक्तिबोध के साहित्य में मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी अक्सर 'मिथ्या चेतना' का शिकार होता है। वह किताबी ज्ञान से क्रांति लाना चाहता है, लेकिन ज़मीनी यथार्थ से उसका कोई संपर्क नहीं होता। वह सोचता है कि उसकी बौद्धिक बहसें ही पर्याप्त हैं, जबकि वास्तविकता यह है कि बिना 'एक्शन' के विचार मृत हैं। कविता की पंक्तियाँ 'अब तक क्या किया?/ जीवन क्या जिया?/ ज़्यादा लिया और दिया बहुत-बहुत कम...' नायक के इसी गहरे अपराधबोध को दर्शाती हैं। उसे महसूस होता है कि उसने समाज से सुख-सुविधाएँ तो बहुत ली हैं, लेकिन उसके बदले में समाज को कुछ सार्थक नहीं लौटाया है। “जबतक समाज पर घन का शासन रहेगा तबतक यह चारित्रिक संकट, अधिक से अधिक असन्तोष और अव्यवस्था उत्पन्न करने के अतिरिक्त मानव मूल्यों की हानि के साथ ही, लाभ-लोभ से प्रेरित 'समझदारी' को प्रधानता देता जायेगा, आदमी ज्यादा से ज्यादा टुच्चा और ओछा होता चला जायेगा। फलतः न केवल सामान्य जनता पर उसके दासों उपदासों द्वारा शोषण का बोझ बढ़ता जायेगा वरन् यह कि उन स्वामियों और दासों तथा उपदासों के चारित्रिक अधःपतन से उत्पन्न परिस्थिति भी सामान्य जनता के लिए अधिकाधिक भयावह और दुर्वह होती जायेगी। ऐसे भयानक दृश्यों का विस्तार भारत में आज भी कम नहीं है।”[11]

जनता का सामूहिक रूप अनेक 'आत्म' से मिलकर बना है। अतः वह 'आत्म' से उद्भूत हुई है। यह एक काव्यात्मक पैराडॉक्स है कि समूह इकाई से जन्मा है लेकिन है तो सत्य। समाज की सारी शोषित इकाइयाँ मिलकर ही अभिव्यक्ति यानी जुझारू व्यक्तिसत्ता बनाती हैं।

मुक्तिबोध ने अस्मिता और आत्मनिर्वासन के इस जटिल विषय को व्यक्त करने के लिए 'फैंटेसी' की शिल्प-विधि का अद्भुत प्रयोग किया है। फैंटेसी कोई स्वप्नलोक नहीं है, बल्कि यह वह तकनीक है जिसके द्वारा मुक्तिबोध दबाए गए सच को चेतन स्तर पर लाते हैं। जब यथार्थ इतना भयावह हो जाए कि उसे सीधी भाषा में कहना संभव न हो, तब फैंटेसी का जन्म होता है। तिलिस्मी गुफाएँ, खून से लथपथ रहस्यमय पुरुष, पागल की बड़बड़ाहट, आधी रात को शहर में मार्शल लॉ का लगना, और एक विशाल जुलूस का निकलना—ये सब फैंटेसी के दृश्य हैं। ये दृश्य नायक के खंडित मनोविज्ञान और एक बीमार समाज के प्रतीक हैं।

वर्ष- 1, अंक- 3 (जुलाई–सितंबर 2026)
ISSN: 3139-5317 (Online), 3139-5325 (Print)

“कविता में कहने की आदत नहीं, पर कह दूँ
वर्तमान समाज चल नहीं सकता ।
पूँजी से जुड़ा हुआ हृदय बदल नहीं सकता,
स्वातंत्र्य व्यक्ति का वादी
छल नहीं सकता मुक्ति के मन को,
जन को ।”[12]

इस फैंटेसी के ज़रिए मुक्तिबोध ने मध्यवर्ग के उस 'सबकॉन्शियस' (अवचेतन) को उघाड़ कर रख दिया है जहाँ डर, स्वार्थ और पलायनवाद की जड़ें गहरी जमी हुई हैं।

कविता केवल निराशा या संकट का चित्रण नहीं करती; यह इसका एक ठोस समाधान भी प्रस्तुत करती है। मुक्तिबोध का स्पष्ट मानना है कि इस 'अस्मिता के संकट' का एकमात्र समाधान 'वर्गापसरण' है। जब तक मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी अपने झूठे अहंकार, अपनी 'सफेदपोश' प्रतिष्ठा और सुविधाओं का मोह नहीं त्यागेगा, तब तक वह इस संकट से बाहर नहीं आ सकता।

“बौद्धिक वर्ग है क्रीतदास,
किराए के विचारों का उद्भास ।
बड़े-बड़े चेहरों पर स्याहियाँ पुत गईं।
नपुंसक श्रद्धा ”[13]

नायक को अंततः यह एहसास होता है कि उसकी 'परम अभिव्यक्ति' अँधेरे कमरों में नहीं मिलेगी। वह ज्ञान की किताबों या अकेलेपन में नहीं है। कविता के अंत में नायक उस परम सत्य की खोज में सड़कों पर उतर आता है—

“'खोजता हूँ पठार... / पहाड़... / समंदर... /
जहाँ मिल सके मुझे मेरी वह खोई हुई परम अभिव्यक्ति!”[14]

यह खोज वास्तव में जनता के बीच जाने की खोज है। इसे मुक्तिबोध 'व्यक्तित्वान्तर' कहते हैं। व्यक्तित्वान्तर का अर्थ है अपने पुराने कायर मध्यवर्गीय खोल को तोड़कर एक नया, साहसी और जन-प्रतिबद्ध स्वरूप धारण करना। जब व्यक्ति अपना स्वार्थ छोड़कर 'जनता के साथ' खड़ा होता है, तब उसका आत्मनिर्वासन समाप्त हो जाता है और उसे अपनी वास्तविक अस्मिता प्राप्त होती है।

निष्कर्ष :

'अँधेरे में' कविता हिंदी साहित्य में मध्यवर्गीय जीवन की विडंबनाओं का सबसे महान महाकाव्यात्मक आख्यान है। प्रस्तुत शोध के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि मुक्तिबोध ने अपनी इस कविता के माध्यम से पूंजीवादी व्यवस्था के उस षड्यंत्र को बेनकाब किया है जो व्यक्ति को समाज से काटकर आत्मनिर्वासित कर देता है। अस्मिता का संकट केवल एक दार्शनिक समस्या नहीं है, यह एक राजनीतिक और आर्थिक शोषण का परिणाम है। मुक्तिबोध यह चेतावनी देते हैं कि यदि बुद्धिजीवी वर्ग ने अपने 'आत्मनिर्वासन' को नहीं तोड़ा और वह 'वर्गापसरित' होकर शोषित जनता के

वर्ष- 1, अंक- 3 (जुलाई–सितंबर 2026)
ISSN: 3139-5317 (Online), 3139-5325 (Print)

साथ नहीं जुड़ा, तो फासीवादी ताकतें (जुलूस के लोग) पूरे समाज को निगल जाएँगी। आज के उपभोक्तावादी और स्वार्थ-केंद्रित समाज में, जहाँ व्यक्ति और भी अधिक आत्म-केंद्रित हो गया है, मुक्तिबोध की यह कविता और भी अधिक प्रासंगिक हो जाती है। यह कविता हमें हमारे भीतर के 'रहस्यमय पुरुष' को जगाने और अपनी वास्तविक सामाजिक अस्मिता को पहचानने की प्रेरणा देती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. 'मुक्तिबोध के प्रतीक और बिम्ब', चंचल चौहान, वाणी प्रकाशन, पृ. 133
2. एक साहित्यिक की डायरी, गजानन माधव मुक्तिबोध, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, पृ. 36
3. एक साहित्यिक की डायरी, गजानन माधव मुक्तिबोध, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, पृ. 30
4. प्रतिनिधि कविताएं, गजानन माधव मुक्तिबोध, संपादक अशोक वाजपेयी, राजकमल प्रकाशन, पृ. 128
5. एक साहित्यिक की डायरी, गजानन माधव मुक्तिबोध, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, पृ. 33
6. प्रतिनिधि कविताएं, गजानन माधव मुक्तिबोध, संपादक अशोक वाजपेयी, राजकमल प्रकाशन, पृ. 139
7. वही पृ. 132
8. एक साहित्यिक की डायरी, गजानन माधव मुक्तिबोध, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, पृ. 35
9. प्रतिनिधि कविताएं, गजानन माधव मुक्तिबोध, संपादक अशोक वाजपेयी, राजकमल प्रकाशन, पृ. 142
10. मुक्तिबोध रचनावली भाग-2, नेमिचन्द्र जैन, राजकमल प्रकाशन, पृ. 379
11. एक साहित्यिक की डायरी, गजानन माधव मुक्तिबोध, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, पृ. 37
12. प्रतिनिधि कविताएं, गजानन माधव मुक्तिबोध, संपादक अशोक वाजपेयी, राजकमल प्रकाशन, पृ. 164
13. वही पृ. 166
14. वही पृ. 171